



चारण साहित्य की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि एवं साहित्यिक स्वरूप

सुन्दर दान, डॉ. कैलाश चंद सैनी

शोधार्थी, हिन्दी विभाग, पंडित दीनदयाल उपाध्याय श्रेयावाटी विश्वविद्यालय, सीकर, राजस्थान, भारत
शोध निर्देशक, सहायक आचार्य, हिन्दी विभाग, श्री कल्याण राजकीय कन्या महाविद्यालय, सीकर, राजस्थान, भारत

DOI: <https://doi.org/10.66856/ijhr.2026.12.4.12255>

सारांश

प्रस्तुत शोध-पत्र में राजस्थान की साहित्यिक परंपरा के महत्वपूर्ण अंग चारण साहित्य की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि एवं साहित्यिक स्वरूप का अध्ययन किया गया है। चारण परंपरा के प्राचीन उल्लेखों से लेकर मध्यकालीन राजस्थान में चारणों की सामाजिक, सांस्कृतिक एवं साहित्यिक भूमिका के विकास को रेखांकित किया गया है। अध्ययन में यह स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है कि चारण साहित्य को केवल वीरगाथात्मक साहित्य के रूप में देखना उसके व्यापक स्वरूप को सीमित करना होगा। इसमें वीरता, स्वाभिमान, वचनबद्धता, दानशीलता और राजपूती जीवन-मूल्यों के साथ नीति, भक्ति, लोकजीवन, सामाजिक संबंध तथा मानवीय संवेदनाओं की भी अभिव्यक्ति हुई है।

शोध-पत्र में चारण साहित्य और डिंगल भाषा के पारस्परिक संबंध का विवेचन करते हुए डिंगल की ओजपूर्ण अभिव्यक्ति, भाषिक विशिष्टता तथा छंदगत विविधता को रेखांकित किया गया है। दोहा, सोरठा, गीत और छप्पय आदि काव्यरूपों के माध्यम से चारण कवियों ने वीरता, त्याग, स्वामीभक्ति और जीवन-मूल्यों को प्रभावशाली रूप में अभिव्यक्त किया। साथ ही, चारण साहित्य के इतिहास-बोध का विश्लेषण करते हुए यह स्पष्ट किया गया है कि इसमें तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन से संबंधित अनेक प्रसंग सुरक्षित हैं। हालांकि काव्यात्मक कल्पना, अतिशयोक्ति और भावात्मकता के कारण इसके ऐतिहासिक उपयोग में तुलनात्मक परीक्षण आवश्यक है।

अध्ययन से यह सामने आता है कि चारण साहित्य राजस्थान की सामूहिक स्मृति, वीर परंपरा, लोक-संस्कृति और सांस्कृतिक चेतना का महत्वपूर्ण साहित्यिक आधार है। इसका महत्व केवल इसकी प्राचीनता अथवा वीर-वर्णन में नहीं, बल्कि इसके भाषिक, साहित्यिक, सामाजिक, ऐतिहासिक और सांस्कृतिक योगदान में भी निहित है।

मूल शब्द: चारण साहित्य, चारण परंपरा, राजस्थान, डिंगल, वीर रस, वीर-काव्य, लोकजीवन, इतिहास-बोध, राजपूती जीवन-मूल्य, सांस्कृतिक चेतना, लोक-संस्कृति, छंद, वीर परंपरा।

राजस्थान की साहित्यिक परंपरा भारतीय साहित्य की बहुरंगी एवं समृद्ध परंपराओं में अपना विशिष्ट स्थान रखती है। इस साहित्यिक परंपरा के निर्माण में चारण कवियों की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण रही है। चारणों की साहित्य-साधना केवल राजाओं और योद्धाओं के यशोगान तक सीमित नहीं रही, बल्कि उसमें तत्कालीन सामाजिक जीवन, युद्ध-संस्कृति, लोकमानस, नैतिक मूल्यों, धार्मिक आस्था, दानशीलता, स्वाभिमान तथा मानवीय संवेदनाओं के विविध रूप अभिव्यक्त हुए हैं। इस दृष्टि से चारण साहित्य को केवल वीरगाथात्मक साहित्य मानना उसके व्यापक स्वरूप को सीमित करना होगा।

चारण साहित्य की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि इसमें साहित्य और इतिहास का निकट संबंध दिखाई देता है। युद्धों, राजवंशों, वीर पुरुषों, दानवीरों तथा सामाजिक घटनाओं का वर्णन करते हुए चारण कवियों ने तत्कालीन जीवन के अनेक पक्षों को काव्यात्मक रूप में सुरक्षित किया। मनोहर प्रभाकर ने अपने अध्ययन में विशेष रूप से 1500 से 1800 ई. के मध्य राजस्थानी साहित्य में चारणों के योगदान का विश्लेषण किया है और मध्यकालीन राजस्थान में चारण संस्था तथा उसके साहित्यिक विकास को स्वतंत्र रूप से विवेचित किया है।¹ इससे स्पष्ट होता है कि चारण साहित्य राजस्थान की साहित्यिक और ऐतिहासिक चेतना के अध्ययन का महत्वपूर्ण आधार है।

चारण साहित्य के स्वरूप को समझने के लिए उसकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, परंपरागत मान्यताओं, मध्यकालीन राजस्थान की सामाजिक-सांस्कृतिक परिस्थितियों, डिंगल भाषा तथा उसके विषयगत एवं काव्यगत स्वरूप का अध्ययन आवश्यक है। प्रस्तुत शोध-पत्र का उद्देश्य चारण साहित्य की इसी विकास-यात्रा को

रेखांकित करते हुए उसके प्रमुख साहित्यिक वैशिष्ट्य और ऐतिहासिक महत्व को स्पष्ट करना है।

चारण परंपरा की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

चारण परंपरा की प्राचीनता के संबंध में भारतीय साहित्य में अनेक उल्लेख मिलते हैं। रामायण और महाभारत जैसे प्राचीन ग्रंथों में 'चारण' शब्द का प्रयोग हुआ है। वाल्मीकि रामायण के बालकाण्ड में चारणों का उल्लेख अन्य दिव्य एवं सांस्कृतिक समुदायों के साथ मिलता है—

“ऋषयश्च महात्मानः सिद्धविद्याधरोरगाः।

चारणाश्च सुतान् वीरान् ससृजुर्वनचारिणः॥”²

इसी प्रकार महाभारत के आदिपर्व में भी 'सिद्धचारणसंघ' का उल्लेख मिलता है—

“तत्रापि तपसि श्रेष्ठे वर्तमानः स वीर्यवान्।

सिद्धचारणसंघानां बभूव प्रियदर्शनः॥”³

इन उल्लेखों को चारणों की वर्तमान सामाजिक जातीय संरचना का प्रत्यक्ष और निर्णायक ऐतिहासिक प्रमाण मानना उचित नहीं होगा। किंतु ये संदर्भ इस बात की ओर संकेत करते हैं कि भारतीय सांस्कृतिक परंपरा में 'चारण' नामक समुदाय या परंपरा की स्मृति प्राचीन रही है। राजस्थान में विकसित चारण परंपरा ने बाद के काल में जिस विशिष्ट सामाजिक और साहित्यिक रूप

को प्राप्त किया, उसे समझने के लिए इन प्राचीन उल्लेखों को सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के रूप में देखा जा सकता है।

चारणों की उत्पत्ति के संबंध में परंपरा और इतिहास दोनों में विभिन्न मत मिलते हैं। कुछ परंपराएँ चारणों को देव-सृष्टि से जोड़ती हैं, जबकि कुछ मान्यताएँ उन्हें राजाओं और क्षत्रिय समाज से संबद्ध सांस्कृतिक वर्ग के रूप में देखती हैं। ऐसी मान्यताओं का साहित्यिक और सांस्कृतिक महत्त्व अवश्य है, किंतु आधुनिक ऐतिहासिक अध्ययन में इनके संबंध में सावधानी आवश्यक है। इसलिए चारणों की उत्पत्ति से संबंधित आख्यानों को ऐतिहासिक तथ्य के रूप में स्थापित करने के बजाय परंपरागत विश्वास और सांस्कृतिक स्मृति के रूप में देखना अधिक उपयुक्त है।

मध्यकालीन राजस्थान में चारणों की भूमिका धीरे-धीरे अधिक विशिष्ट होती गई। राजपूत राज्यों की राजनीतिक संरचना, युद्धप्रधान जीवन और सामंती व्यवस्था के बीच चारण कवियों को राजदरबारों तथा राजपूत समाज में विशिष्ट सम्मान प्राप्त हुआ। वे वीरों के यश का गान करने के साथ-साथ सामाजिक मर्यादा, वचन, प्रतिष्ठा और दानशीलता जैसे मूल्यों के संरक्षक भी माने गए। इस प्रकार चारण की भूमिका केवल कवि की न रहकर सामाजिक-सांस्कृतिक मध्यस्थ की भी बन गई।

मनोहर प्रभाकर के अध्ययन में मध्यकालीन राजस्थान में चारण संस्था के विकास को स्वतंत्र महत्त्व दिया गया है। उनके ग्रंथ की विषय-सूची में 'Evolution and Growth of Bardic Communities' तथा 'The Institution of Carnas in Medieval Rajasthan' जैसे अध्याय शामिल हैं, जो चारण समुदाय के सामाजिक विकास और साहित्यिक योगदान के परस्पर संबंध को स्पष्ट करते हैं।¹⁴

इस प्रकार चारण परंपरा का विकास किसी एक कालखंड या एक साहित्यिक घटना का परिणाम नहीं था। यह दीर्घकालीन सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक प्रक्रियाओं से निर्मित हुई, जिसमें राजस्थान की वीर परंपरा, राजपूती जीवन-मूल्य और लोक-स्मृति का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा।

चारण साहित्य का विकास एवं साहित्यिक स्वरूप

चारण साहित्य का वास्तविक विकास राजस्थान के मध्यकालीन राजनीतिक और सामाजिक परिवेश के साथ गहरे रूप में जुड़ा हुआ दिखाई देता है। युद्ध, राज्य-विस्तार, राजवंशीय संघर्ष, वीरता, दान, स्वाभिमान तथा प्रतिष्ठा उस समय के जीवन के महत्त्वपूर्ण पक्ष थे। चारण कवियों ने इन्हीं जीवनानुभवों को अपनी रचनात्मक अभिव्यक्ति का आधार बनाया। परिणामतः उनके साहित्य में वीरता और युद्ध के प्रसंगों की प्रधानता स्वाभाविक रूप से दिखाई देती है।

डॉ. मोहनलाल जिज्ञासु ने चारण साहित्य के व्यापक स्वरूप का मूल्यांकन करते हुए लिखा है- "यह साहित्य अत्यंत विशद, गहन एवं समृद्ध है।"¹⁵ यह कथन चारण साहित्य की व्यापकता को समझने में महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि इसका विस्तार केवल वीर-काव्य तक सीमित नहीं है। इसमें विभिन्न कालों में विविध विषयों और काव्यरूपों का विकास हुआ।

चारण साहित्य का प्रमुख आधार वीर रस रहा है। युद्धभूमि में वीरता, आत्मोत्सर्ग, स्वामीभक्ति, वचन-पालन और प्रतिष्ठा की रक्षा जैसे प्रसंगों को चारण कवियों ने अत्यंत ओजपूर्ण भाषा में प्रस्तुत किया। वीर के लिए मृत्यु पराजय नहीं, बल्कि यश और गौरव की प्राप्ति का माध्यम बन जाती है। इसी कारण चारण काव्य में युद्ध का वर्णन केवल घटना-विवरण नहीं रह जाता, बल्कि वह वीरता के आदर्श को प्रतिष्ठित करने वाला काव्यात्मक विधान बन जाता है।

चारण साहित्य में वीरता के साथ-साथ नीति और लोकानुभव की भी पर्याप्त अभिव्यक्ति हुई है। कवियों ने व्यक्ति और समाज के

व्यवहार से जुड़े मूल्यों को दोहों, गीतों और अन्य काव्यरूपों के माध्यम से व्यक्त किया। सत्य, वचनबद्धता, दान, शौर्य, स्वाभिमान और सामाजिक प्रतिष्ठा जैसे मूल्य उनके साहित्य में बार-बार सामने आते हैं। इस कारण चारण काव्य को तत्कालीन समाज की मूल्य-व्यवस्था को समझने का एक महत्त्वपूर्ण माध्यम माना जा सकता है।

चारण साहित्य में भक्ति की अभिव्यक्ति भी मिलती है। यद्यपि वीर रस इसकी प्रमुख प्रवृत्तियों में रहा, फिर भी धार्मिक आस्था, देवी-देवताओं के प्रति श्रद्धा तथा आध्यात्मिक चेतना के स्वर अनेक रचनाओं में दिखाई देते हैं। इसी प्रकार श्रृंगार, करुणा, वात्सल्य और नीति संबंधी भाव भी पूरी तरह अनुपस्थित नहीं हैं। अतः चारण साहित्य का स्वरूप बहुसंस्कृत है, यद्यपि उसकी केंद्रीय चेतना में वीरता और स्वाभिमान की विशेष प्रतिष्ठा दिखाई देती है।

चारण साहित्य का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष उसका लोक-संबंध है। इसकी अनेक रचनाओं में तत्कालीन राजस्थान का जीवन, सामाजिक संबंध, युद्ध की परिस्थितियाँ, लोकविश्वास, रीति-रिवाज और सामंती जीवन के अनेक दृश्य संरक्षित हैं। इस दृष्टि से चारण साहित्य राजस्थानी लोक-संस्कृति की स्मृति को सुरक्षित रखने वाला साहित्य भी है।

चारण काव्य में विभिन्न छंदों का प्रयोग हुआ। दोहा, सोरठा, गीत और छप्पय जैसे छंद विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। चारण कवियों ने इन छंदों को केवल छंदात्मक अनुशासन के रूप में नहीं, बल्कि भावों की प्रभावपूर्ण अभिव्यक्ति के माध्यम के रूप में विकसित किया। युद्ध, वीरता, त्याग और स्वाभिमान जैसे प्रसंगों में छंद की लयात्मकता काव्य के भाव को अधिक प्रभावशाली बनाती है। कविराजा बाँकीदास के दोहों में वीरता और स्वामीभक्ति की इसी भावभूमि को देखा जा सकता है—

"कृपण जतन धन रौ करै, कायर जीव जतन।

सूर जतन उण रौ करै, जिण रौ खाधौ अन्न॥"¹⁶

इस दोहे में कवि ने कृपण, कायर और वीरकृइन तीन जीवन-दृष्टियों को सामने रखकर वीरता के आदर्श को प्रतिष्ठित किया है। यहाँ 'सूर' के लिए अपने स्वामी अथवा आश्रयदाता के प्रति कृतज्ञता और वचनबद्धता धन अथवा प्राण की सुरक्षा से अधिक महत्त्वपूर्ण है। दोहे की संक्षिप्तता, लय और कथन की तीव्रता के कारण भाव सीधे और प्रभावपूर्ण ढंग से पाठक तक पहुँचता है। यह उदाहरण स्पष्ट करता है कि चारण कवियों के लिए दोहा केवल छंद का विधान नहीं, बल्कि जीवन-मूल्यों की सघन अभिव्यक्ति का माध्यम भी था। इस दोहे का स्रोत डिंगल में वीररस में दिया गया है।

इसी प्रकार, चारण काव्य में छंद का प्रयोग केवल वीरता अथवा युद्ध-वर्णन तक सीमित नहीं रहा, बल्कि कथ्य और भाव की प्रकृति के अनुरूप उसके विविध रूप विकसित हुए। दोहे की संक्षिप्तता जहाँ किसी जीवन-सत्य, नीति-विचार अथवा वीर-आदर्श को तीव्रता के साथ अभिव्यक्त करने में सहायक हुई, वहीं गीत और अन्य छंदों ने भावों को अधिक विस्तार तथा लयात्मकता प्रदान की। इस प्रकार चारण कवियों की छंद-योजना उनके कथ्य के साथ गहरे रूप में संबद्ध दिखाई देती है। छंद उनके लिए केवल काव्य की बाहरी संरचना नहीं, बल्कि अनुभूति को गति, स्वर और प्रभाव प्रदान करने वाला रचनात्मक उपकरण था।

चारण काव्य की इस छंदगत विविधता का संबंध उसकी व्यापक विषय-वस्तु से भी है। इसकी रचनाओं में वीरता के अतिरिक्त राजाओं, सरदारों, दानवीरों, युद्धों तथा सामाजिक जीवन से संबंधित अनेक प्रसंगों का चित्रण मिलता है। डॉ. गौरीशंकर ओझा के मत को उद्धृत करते हुए मोहनलाल जिज्ञासु लिखते हैं—

“डिंगल भाषा में लिखे हुए हजारों गीत मिलते हैं।”⁷ साथ ही वे इन रचनाओं की ऐतिहासिक उपयोगिता की ओर संकेत करते हुए पुराने डिंगल दोहों और छप्पयों को भी इतिहास के लिए महत्वपूर्ण मानते हैं।

इस प्रकार चारण साहित्य का साहित्यिक स्वरूप वीरता, नीति, भक्ति, लोकजीवन, इतिहास और मानवीय संवेदना के विविध पक्षों से निर्मित होता है। उसकी मूल शक्ति जीवन के प्रत्यक्ष अनुभवों को काव्यात्मक ऊर्जा प्रदान करने तथा उन्हें लय, भाषा और भाव के माध्यम से प्रभावपूर्ण रूप में प्रस्तुत करने में निहित है। यही कारण है कि चारण काव्य में छंद और कथ्य एक-दूसरे से पृथक् न रहकर परस्पर संबद्ध दिखाई देते हैं। छंद जहाँ अनुभूति को लय और गति प्रदान करता है, वहीं कथ्य उसे अर्थ और संवेदना प्रदान करता है। इस समन्वय ने चारण साहित्य को विशिष्ट साहित्यिक पहचान प्रदान की है।

चारण साहित्य, डिंगल और इतिहास—बोध

चारण साहित्य के विकास को डिंगल की साहित्यिक परंपरा से अलग करके नहीं देखा जा सकता। राजस्थान की मध्यकालीन काव्य-परंपरा में डिंगल ने विशेष स्थान प्राप्त किया। डिंगल को लंबे समय तक चारण कवियों की प्रमुख काव्य-अभिव्यक्ति के रूप में देखा गया है, यद्यपि इसका प्रयोग केवल चारणों तक सीमित नहीं था। इसी कारण डिंगल और चारण साहित्य को पूर्णतः पर्याय मानना भी उचित नहीं है।

‘डिंगल’ शब्द की व्युत्पत्ति और उसके स्वरूप को लेकर विद्वानों में मतभेद रहे हैं। मोहनलाल जिज्ञासु ने विभिन्न मतों का उल्लेख करते हुए डॉ. मोतीलाल मेनारिया के मत को इस प्रकार उद्धृत किया है— “डिंगल की उत्पत्ति ‘डींग’ (अतिरंजना) शब्द के साथ ‘ल’ प्रत्यय जोड़ने से हुई है।”⁸ किंतु जिज्ञासु स्वयं इस मत को पूर्णतः स्वीकार नहीं करते और स्पष्ट करते हैं कि डिंगल के सभी वर्णनों को अतिशयोक्तिपूर्ण मानना उचित नहीं है। इससे स्पष्ट है कि डिंगल की व्युत्पत्ति का प्रश्न अभी भी बहस का विषय रहा है।

डिंगल की प्रमुख विशेषता उसकी ओजपूर्ण और वीरभाव को व्यक्त करने वाली अभिव्यक्ति में दिखाई देती है। युद्ध, शौर्य, स्वाभिमान और आत्मोत्सर्ग से संबंधित विषयों को प्रभावशाली ढंग से व्यक्त करने के लिए इसकी ध्वन्यात्मकता, शब्द-संपदा और छंद-योजना का उपयोग किया गया। इसी कारण डिंगल का विकास राजस्थानी वीर-काव्य की परंपरा से गहरे रूप में जुड़ा रहा। इसकी ओजपूर्ण अभिव्यक्ति और संक्षिप्त किंतु प्रभावशाली कथन-शैली का उदाहरण दुरसा आढ़ा के सोरठों में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। महाराणा प्रताप की वीरता और स्वाधीनता-चेतना को व्यक्त करते हुए दुरसा आढ़ा लिखते हैं—

“अकबर समद अथाह, तिंह डूबा हींदू तुरक।

मेवाड़ो निण माह, पोयण फूल प्रतापसी॥”⁹

यहाँ कवि ने अकबर की विशाल सत्ता को ‘अथाह समुद्र’ और महाराणा प्रताप को उसी समुद्र में खिले हुए ‘कमल’ के रूप में रूपायित किया है। इस रूपक के माध्यम से प्रताप की स्वतंत्रता, स्वाभिमान और अदम्य व्यक्तित्व को अत्यंत संक्षिप्त एवं प्रभावशाली ढंग से अभिव्यक्त किया गया है। ‘समद’, ‘अथाह’, ‘मेवाड़ो’, ‘पोयण फूल’ और ‘प्रतापसी’ जैसे डिंगल शब्द-प्रयोग काव्य में स्थानीयता के साथ-साथ ओज और ध्वन्यात्मक प्रभाव उत्पन्न करते हैं। इस प्रकार डिंगल की शक्ति केवल उसके कठिन या विशिष्ट शब्द-भंडार में नहीं, बल्कि कम शब्दों में व्यापक वीर-भाव और सांस्कृतिक चेतना को व्यक्त करने की उसकी क्षमता में निहित है।

मोतीलाल मेनारिया की ‘राजस्थानी भाषा और साहित्य’, राजस्थानी भाषा एवं साहित्य के अध्ययन की महत्वपूर्ण कृतियों में है। इसके विषय-सूचक विवरण में चारण, डिंगल, पिंगल, वीर-काव्य आदि से संबंधित पर्याप्त सामग्री का संकेत मिलता है। ग्रंथ का प्रकाशन हिंदी साहित्य सम्मेलन से 1961 में हुआ और इसमें राजस्थानी भाषा एवं साहित्य का विस्तृत विवेचन है।¹⁰

चारण साहित्य का दूसरा महत्वपूर्ण पक्ष उसका इतिहास-बोध है। चारण कवियों ने अपने समय की राजनीतिक और सामाजिक घटनाओं को काव्य में सुरक्षित किया। युद्धों, राजाओं, वीरों, राज्य-विस्तार, दान और संघर्षों के वर्णन में अनेक ऐसे तथ्य मिलते हैं जो इतिहास-अध्ययन के लिए उपयोगी हो सकते हैं। डॉ. गौरीशंकर ओझा के मत का उल्लेख करते हुए जिज्ञासु लिखते हैं कि पुराने डिंगल दोहे और छप्पय “इतिहास के लिए गीतों के समान ही उपयोगी हैं।”¹¹

हालाँकि चारण साहित्य में इतिहास-बोध को स्वीकार करते समय उसके काव्यात्मक स्वरूप को भी ध्यान में रखना आवश्यक है। चारण कवियों का उद्देश्य आधुनिक इतिहासकार की तरह घटनाओं का निष्पक्ष दस्तावेजीकरण करना नहीं था। उनके सामने वीरता, यश, आदर्श और भावात्मक प्रभाव की स्थापना भी प्रमुख थी। इसलिए उनके वर्णनों में तथ्य के साथ कल्पना, अतिशयोक्ति और काव्यात्मक अलंकरण का समावेश स्वाभाविक है। इतिहासकार के लिए चारण साहित्य उपयोगी स्रोत है, किंतु उसका उपयोग अन्य ऐतिहासिक स्रोतों के तुलनात्मक परीक्षण के साथ किया जाना चाहिए।

यही विशेषता चारण साहित्य को साहित्य और इतिहास के बीच एक महत्वपूर्ण सेतु बनाती है। एक ओर यह तत्कालीन घटनाओं की स्मृति को सुरक्षित करता है और दूसरी ओर उन घटनाओं को लोकमानस में प्रतिष्ठित करने के लिए भावात्मक एवं काव्यात्मक रूप प्रदान करता है। इसीलिए चारण साहित्य का इतिहास-बोध केवल घटनाओं के संरक्षण तक सीमित नहीं है, बल्कि वह समाज की सामूहिक स्मृति और मूल्य-चेतना को भी अभिव्यक्त करता है।

चारण साहित्य का साहित्यिक महत्त्व

चारण साहित्य का साहित्यिक महत्त्व उसकी विषय-वस्तु, भाषा, छंद, भाव-प्रवणता और सामाजिक-सांस्कृतिक उपयोगिता के संयुक्त रूप में सामने आता है। इसमें राजस्थान के मध्यकालीन जीवन की अनेक परतें सुरक्षित हैं। वीरता और स्वाभिमान से लेकर दानशीलता, वचनबद्धता, लोकविश्वास और सामाजिक संबंधों तक अनेक जीवन-मूल्य इसके काव्य में अभिव्यक्त हुए हैं। चारण साहित्य की सबसे उल्लेखनीय उपलब्धियों में से एक यह है कि उसने राजस्थान की वीर परंपरा को साहित्यिक अभिव्यक्ति प्रदान की। वीरता को केवल व्यक्तिगत साहस के रूप में नहीं, बल्कि सामाजिक प्रतिष्ठा, कर्तव्य और मर्यादा के साथ जोड़कर प्रस्तुत किया गया। इस साहित्य में वीर के साथ-साथ उसके परिवार, समाज और राज्य की प्रतिष्ठा भी जुड़ी दिखाई देती है। इस प्रकार वीर-काव्य व्यक्तिगत चरित्र-चित्रण से आगे बढ़कर सामूहिक जीवन-मूल्यों की अभिव्यक्ति बन जाता है।

दूसरी ओर, चारण साहित्य राजस्थान की सांस्कृतिक स्मृति का भी महत्वपूर्ण भंडार है। लोकभाषा, स्थानीय शब्दावली, सामाजिक व्यवहार, युद्ध-परंपराएँ, दान की संस्कृति और राजपूती जीवन-मूल्यों का जो चित्र इन रचनाओं में मिलता है, वह राजस्थान के सांस्कृतिक इतिहास को समझने में सहायक है।

चारण साहित्य का महत्त्व केवल उसके अतीत से संबंधित होने में नहीं है। इसमें निहित स्वाभिमान, वचनबद्धता, त्याग, साहस और सामाजिक उत्तरदायित्व जैसे मूल्य आज भी साहित्यिक विमर्श में प्रासंगिक हो सकते हैं। समकालीन दृष्टि से इसका अध्ययन करते समय आवश्यक है कि इन मूल्यों को उनके ऐतिहासिक

संदर्भ में समझा जाए और आधुनिक सामाजिक चेतना के साथ उनका आलोचनात्मक संबंध स्थापित किया जाए।

डॉ. मोहनलाल जिज्ञासु ने चारण साहित्य के व्यापक महत्त्व को रेखांकित करते हुए उसके संबंध को काव्य और इतिहास दोनों से जोड़ा है। उनके अनुसार 'चारण कवियों ने काव्य और इतिहास के माध्यम से क्षत्रिय जीवन-मूल्यों को अभिव्यक्ति दी।' इस दृष्टि से चारण साहित्य केवल प्रशस्ति या वीरगाथा नहीं, बल्कि एक विशिष्ट ऐतिहासिक-सांस्कृतिक साहित्यिक परंपरा के रूप में सामने आता है।

चारण साहित्य के अध्ययन का एक अन्य महत्वपूर्ण पक्ष यह है कि इसके माध्यम से राजस्थानी साहित्य के विकास की अनेक धाराओं को समझा जा सकता है। मोतीलाल मेनारिया और हीरालाल माहेश्वरी जैसे विद्वानों ने राजस्थानी साहित्य के इतिहास और स्वरूप पर व्यापक कार्य किया। हीरालाल माहेश्वरी की History of Rajasthani Literature का प्रकाशन साहित्य अकादमी, नई दिल्ली से 1980 में हुआ, जो राजस्थानी साहित्य के ऐतिहासिक अध्ययन की महत्वपूर्ण कृतियों में सम्मिलित है।¹² इस प्रकार चारण साहित्य का साहित्यिक महत्त्व केवल उसकी प्राचीनता या वीर-वर्णन में नहीं, बल्कि उसके व्यापक जीवन-संबंध, भाषिक योगदान, इतिहास-बोध और सांस्कृतिक स्मृति में निहित है। यह साहित्य राजस्थान के अतीत को केवल स्मरण नहीं करता, बल्कि उसे काव्यात्मक रूप देकर सामूहिक चेतना का हिस्सा बनाता है।

निष्कर्ष

चारण साहित्य राजस्थान की दीर्घकालीन साहित्यिक एवं सांस्कृतिक परंपरा का महत्वपूर्ण अंग है। इसकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि अनेक परंपरागत आख्यानों, मध्यकालीन सामाजिक संरचना और राजस्थानी जीवन के विविध अनुभवों से निर्मित हुई। रामायण और महाभारत में प्राप्त 'चारण' संबंधी उल्लेख इस परंपरा की प्राचीन सांस्कृतिक स्मृति की ओर संकेत करते हैं, जबकि मध्यकालीन राजस्थान में चारणों की सामाजिक प्रतिष्ठा और साहित्यिक सक्रियता ने इसे विशिष्ट स्वरूप प्रदान किया।

चारण साहित्य का विकास वीरता और राजपूती जीवन-मूल्यों के साथ निकटता से जुड़ा रहा, किंतु इसे केवल वीरगाथात्मक साहित्य मानना इसके व्यापक स्वरूप को सीमित करना होगा। इसमें नीति, भक्ति, लोकजीवन, सामाजिक संबंध, मानवीय संवेदना और सांस्कृतिक चेतना के अनेक स्वर विद्यमान हैं। डिंगल ने इसकी काव्य-अभिव्यक्ति को विशिष्ट भाषिक एवं शैलीगत आधार प्रदान किया और वीर रस की प्रभावपूर्ण अभिव्यक्ति के लिए एक समर्थ माध्यम का रूप ग्रहण किया।

चारण साहित्य का इतिहास-बोध भी इसकी विशिष्ट उपलब्धि है। इसमें तत्कालीन राजनीतिक और सामाजिक घटनाओं का संरक्षण हुआ, किंतु काव्यात्मक अतिशयोक्ति और कल्पना के कारण इन रचनाओं का उपयोग ऐतिहासिक स्रोत के रूप में सावधानी और तुलनात्मक परीक्षण के साथ किया जाना चाहिए। इस प्रकार चारण साहित्य इतिहास का विकल्प नहीं, बल्कि इतिहास को समझने में सहायक महत्वपूर्ण साहित्यिक-सांस्कृतिक स्रोत है।

अंततः कहा जा सकता है कि चारण साहित्य राजस्थान की सामूहिक स्मृति, वीर परंपरा और सांस्कृतिक चेतना का सशक्त साहित्यिक दस्तावेज है। इसकी महत्ता उसकी प्राचीनता में जितनी है, उतनी ही उसके जीवंत लोक-संबंध, भाषिक विशिष्टता, काव्यात्मक ओज और ऐतिहासिक-सांस्कृतिक महत्त्व में भी है। इसलिए चारण साहित्य का अध्ययन केवल एक साहित्यिक परंपरा के अध्ययन तक सीमित न रहकर राजस्थान के सामाजिक, सांस्कृतिक और ऐतिहासिक विकास को समझने की व्यापक प्रक्रिया का हिस्सा बन जाता है।

संदर्भ सूची

1. मनोहर प्रभाकर, A Critical Study of Rajasthani Literature, with Exclusive Reference to the Contribution of Cāraṇas, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, 1976
2. वाल्मीकि रामायण, बालकाण्ड, सर्ग 17, श्लोक 9
3. महाभारत, आदिपर्व, अध्याय 120, श्लोक 1
4. मनोहर प्रभाकर, A Critical Study of Rajasthani Literature, with Exclusive Reference to the Contribution of Cāraṇas पंचशील प्रकाशन, जयपुर, 1976, विशेषतः 'The Institution of Cāraṇas in Medieval Rajasthan अध्याय।
5. मोहनलाल जिज्ञासु, चारण साहित्य का इतिहास, भाग 2, जैन ब्रदर्स, 1968-1973
6. मोतीलाल मेनारिया (सम्पा.), डिंगल में वीररस, हिंदी साहित्य सम्मेलन, संस्करण 1944, पृ. 65
7. मोहनलाल जिज्ञासु - चारण साहित्य का इतिहास, भाग 1, "प्राचीन काल" अध्याय
8. मोहनलाल जिज्ञासु, चारण साहित्य का इतिहास, भाग 1, 'विषय प्रवेश'।
9. दुरसा आढ़ा, "अकबर समद अथाह", डिंगल में वीररस, सम्पादक—मोतीलाल मेनारिया, हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 1944, पृ. 54
10. मोतीलाल मेनारिया, राजस्थानी भाषा और साहित्य, हिंदी साहित्य सम्मेलन, 1961
11. मोहनलाल जिज्ञासु, चारण साहित्य का इतिहास, भाग 1, 'प्राचीन काल'।
12. हीरालाल माहेश्वरी, History of Rajasthani Literature, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, 1980